पूज्य लालचंदभाई के प्रवचन
प्रश्न एवं तत्त्व-चर्चा, जयपुर,
तारीख ०२-०८-१९९०, ०३-०८-१९९०, प्रवचन ५७०

(This pravachan is exactly same as Apurva Shrut Dhara Pravachan A1197)

मुमुक्षु: जो प्रकरण चल रहा है, उसी प्रकरण से संबंधित प्रश्न है। ज्ञान की पर्याय स्वयं ज्ञेय और स्वयं ज्ञाता है - इस कथन को स्पष्ट कीजिए।

पू. लालचंदभाई: ज्ञान की पर्याय स्वयं ज्ञेय है और स्वयं ज्ञाता है, वो भेद का कथन है। अभेद से तो आत्मा ही ज्ञान है और आत्मा ही ज्ञेय है और आत्मा ही ज्ञाता है (समयसार कलश २७१)। क्रोध आदि और पर तेरा ज्ञेय नहीं है परंतु तेरा ज्ञेय तो ज्ञान की पर्याय है, ऐसे भेद से ज्ञान की पर्याय को ज्ञेय भी कहा और ज्ञान भी कहा; ज्ञान-कल्लोलों ज्ञान द्वारा जानने में आती हैं - ऐसा आया है न?

मुमुक्षु: हाँ जी।

पू. लालचंदभाई: ज्ञान की पर्याय ज्ञान के द्वारा जानने में आती है, इसलिए पर्याय का नाम ज्ञेय भी है और पर्याय का नाम ज्ञान भी है; वो भेद का कथन है। अभेद से तो ज्ञान और ज्ञायक अभेद है; भेद नहीं है, टुकड़ा नहीं है उसमें, वो अभेद है। अभेद अपेक्षा से तो ज्ञायक आत्मा ही ज्ञान है, आत्मा ही ज्ञेय है और आत्मा ही ज्ञाता है; ज्ञाता-ज्ञान और ज्ञेय अभेद आत्मा है। भेद अपेक्षा से ज्ञान की पर्याय को ज्ञेय कहा जाता है; राग मेरा ज्ञेय नहीं है तो ज्ञान मेरा ज्ञेय है, ऐसा कहा जाता है।

मुमुक्षु: जानने की क्रिया जो है वो पर्याय में होती है या आत्मद्रव्य में होती है?

पू. लालचंदभाई: भेद अपेक्षा से पर्याय में होती है, अभेद अपेक्षा से आत्मा में होती है। क्या कहा? फिर से। वो निष्क्रिय-निष्क्रिय, अकर्ता-अकर्ता होता है ना, इसलिए वो ज्ञेयप्रधान कथन ख्याल में नहीं आता है।

मुमुक्षु: वो भी साहब आपने ही घुँटाया है।

पू. लालचंदभाई: हमने ही घुँटाया है और हम ही वो बात कहते हैं कि आत्मा में ज्ञान क्रिया होती है। पर्याय, ज्ञान की पर्याय में तो क्रिया होती है, भेद अपेक्षा से। जो ज्ञान की पर्याय आत्मसन्मुख हुई तो आत्मा ही कर्ता और आत्मा ही कर्म है। आत्मा अकर्ता होने पर भी आत्मा ही कर्ता और आत्मा कर्म बन जाता है, अनुभव के काल में। जाननहार (है) इसलिए स्वयं कर्ता और स्वयं जानने में आया इसलिए स्वयं कर्म (है), ज्ञान कर्म नहीं (है)। ज्ञान की पर्याय कर्म नहीं (है)।

क्या कहा? फिर से। अकर्ता + कर्ता-कर्म का अनन्यपना = अनुभूति। फिर से, इंग्लिश आया दूसरा।

मुमुक्षु: कर्ता-कर्म का अनन्यपना?

पू. लालचंदभाई: (हाँ।) अकर्ता - त्रिकाली द्रव्य, उसके ऊपर दृष्टि की तो आत्मा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप से परिणमता है; एकांत से अपरिणामी है ऐसा नहीं है, एकांत से निष्क्रिय है ऐसा नहीं है। तो आत्मा का ज्ञान हुआ, तो ज्ञान ने आत्मा को जाना, अहम् किया, तो परिणमा कि नहीं परिणमा? कूटस्थ रहा? पहले मिथ्यात्व था अभी सम्यग्दर्शनरूप से परिणमता है। तो परिणमे सो कर्ता और

परिणाम वह कर्म।

तो अकर्ता + कर्ता-कर्म का अनन्यपना अर्थात् क्या? कि मैं ज्ञायक अकर्ता हूँ, ऐसी दृष्टि में आत्मा आया, तो दृष्टि निर्मल हुई और निर्मल पर्याय में क्रिया हुई, ज्ञान की, दर्शन की, चारित्र की क्रिया हुई कि नहीं हुई? निश्चय मोक्षमार्ग क्रिया है कि नहीं?

मुमुक्षु: जी हाँ।

पू. लालचंदभाई: तो क्रिया हुई कि नहीं (हुई)? तो भेद अपेक्षा से परिणाम में क्रिया होती है, अभेद अपेक्षा से आत्मा क्रियावान है। निष्क्रिय होने पर भी क्रियावान है, ऐसा स्याद्वाद है भैया।

मुमुक्षु: जी हाँ।

पू. लालचंदभाई: एकांत से निष्क्रिय और एकांत से सक्रिय ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु: कोई उदाहरण से समझाइए ना। उदाहरण देकर (समझाइए)।

पू. लालचंदभाई: देखो! ये जल है ना जल, तो मिट्टी के संग से (जल की) पर्याय मलिन हुई; तो पानी मलिन हो गया ऐसा कहने में आता है कि नहीं? पानी मलिन हो गया। ठीक! मलिन तो हुई (है) एक समय की पर्याय; तो भी अभेद करके पानी मलिन हो गया ऐसा कहने में आता है। तो पानी में फिटकरी डालो, तो पानी निर्मल हो जाएगा, जल निर्मल हो जाएगा। निर्मल होती तो है पर्याय, मगर जल निर्मल हो जाता है - ऐसा कहा ना। तो फिटकरी डाली, तो मलिन पर्याय का व्यय (हुआ) और निर्मल पर्याय का उत्पाद (हुआ), ये पर्याय में है; और ध्रुव तो सामान्य निर्मल है ही। सामान्य जो जल है, उसमें कोई फेरफार नहीं होता है, उसमें उत्पाद-व्यय नहीं होता है। तो वो जो निर्मल पर्याय परिणमती थी तो निर्मल पर्याय से, अभेद से देखो तो पानी निर्मल हो गया। पानी निर्मल पर्यायरूप से परिणमित हो गया। मलिन का व्यय (हुआ) और निर्मल का उत्पाद (हुआ), ऐसा है।

ऐसा नहीं है कि एकांत से अकर्ता (है)। कर्ता भी है निर्मल पर्याय का, कथंचित्। दृष्टि अपेक्षा से अकर्ता है, ज्ञान अपेक्षा से वो कर्ता है। और कर्म भी आत्मा, करण भी आत्मा, संप्रदान भी आत्मा - अभेद षट् कारकरूप से परिणमता है।

मुमुक्षु: हाँ जी। ज्ञायक, ज्ञायक मतलब जानने वाला। इस हिसाब से तो वास्तव में पर्याय को ही ज्ञायक कहना चाहिए, द्रव्य स्वभाव को क्यों ज्ञायक कहें?

पू. लालचंदभाई: द्रव्य स्वभाव में जानने की त्रिकाली शक्ति है। जानने की शक्ति है, तो शक्ति की व्यक्त पर्याय भी जाननेरूप होती है, रागरूप नहीं होती है।

तो ज्ञायक जो शक्तिरूप है, उसकी वर्तमान में उपयोगरूप पर्याय भी होती है। वो पर्याय जब ज्ञायक के सन्मुख हुई, अनुभव हुआ तो शुद्धोपयोग हो गया। तो आत्मा शुद्ध हो गया ऐसा कहा जाता है, हुई तो पर्याय (है) शुद्ध मगर आत्मा शुद्ध हो गया (ऐसा कहा)। आत्मा आनंद को भोगता है ऐसा कहा जाता है। पर्याय सापेक्ष से द्रव्य अभेद है।

मुमुक्षु: आप कह रहे हैं कि आत्मा शुद्ध हुआ ऐसा कहा जाता है। मतलब ऐसा है नहीं?

पू. लालचंदभाई: पर्याय अपेक्षा से सौ टका (शुद्ध) हुआ। द्रव्य अपेक्षा से त्रिकाल शुद्ध है, हुआ नहीं है। हुआ, होना, उसमें (द्रव्य में) है नहीं। होना गया.. क्या? तीन बात आई थीं कल।

मुमुक्षु: करना गया, होना गया, मैं रह गया।

पू. लालचंदभाई: हाँ! करना गया, होना गया, मैं रह गया। वो बेन क्या नाम हैं उनका? गजाबेन! गजाबेन को इतना हर्ष आया (कि) आँख में से हर्ष के आँसू निकल गए। उस टाइम पंडित जी ने कहा कि ये तो सूत्र बन गया।

मुमुक्षु: हाँ जी।

पू. लालचंदभाई: ऐसा कहा पंडित जी ने। करना गया, होना गया, मैं रह गया।

मुमुक्षु: इस सूत्र की टीका कीजिए साहब।

पू. लालचंदभाई: करना गया यानि 'मैं रागादि का, पर का कर्ता हूँ' वो अज्ञान गया, अज्ञान चला गया। करना गया। दूसरा शब्द?

मुमुक्षु: होना गया।

पू. लालचंदभाई: होना गया यानि 'मैं निर्मल पर्यायरूप हो गया' वो भी गया। मैं तो प्रथम से ही शुद्ध हूँ, मैं तो प्रथम से शुद्ध हूँ। शुद्ध हुआ नहीं मैं; मैं तो प्रथम से ही शुद्ध हूँ। वो द्रव्यदृष्टि का कथन है।

मुमुक्षु: इसमें जो आपने फरमाया कि करना गया, होना गया। तो ये कहाँ चल गया ये? करना और होना कहाँ गया?

पू. लालचंदभाई: लक्ष में से निकल गया। लक्ष में ज्ञायक ज्ञानानंद परमात्मा आ गया। उसके ऊपर से लक्ष छूट गया।

मुमुक्षु: बहुत सुंदर।

पू. लालचंदभाई: पर्याय तो रह गई, पर्याय का लक्ष छूट जाता है। पर्यायार्थिक चक्षु सर्वथा बंद करना तब द्रव्यार्थिक चक्षु खुलेगी (प्रवचनसार गाथा ११४), तब अनुभव होगा। पर्यायार्थिक चक्षु बंद करना है, पर्याय को अलोक में भेजने की बात नहीं है। पर्याय बिना द्रव्य नहीं (है) और द्रव्य बिना पर्याय नहीं, परस्पर सापेक्ष पदार्थ है। सर्वथा निरपेक्ष नहीं है (और) सर्वथा सापेक्ष भी नहीं है, ज्ञानप्रधान में; पर्याय से कथंचित् सापेक्ष और कथंचित् निरपेक्ष है।

मुमुक्षु: एक प्रश्न है शुद्ध परिणति में श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र तीनों गुणों का अंश है या मात्र ज्ञान गुण का?

पू. लालचंदभाई: नहीं! तीनों का आ गया। शुद्ध परिणति कहो ना, शुद्ध परिणति, तो ज्ञान की परिणति भी शुद्ध, श्रद्धा की परिणति भी शुद्ध, चारित्र की परिणति भी शुद्ध। एक अंश शुद्ध हुआ, आता है ना - एकदेश शुद्ध हुआ तो सर्वदेश शुद्ध हो गया। चिट्ठी, रहस्यपूर्ण-चिट्ठी में, रहस्यपूर्ण-चिट्ठी में आता है। एक श्रीमद् जी ने कहा कि **सर्वगुणांश ते सम्यक्त्व** (श्रीमद् राजचन्द्र वचनामृत, पत्र ९५, वर्ष २३, मुंबई पोष १९४६) और रहस्यपूर्ण चिट्ठी में आता है, शब्द मैं भूल गया (हूँ), उसमें आता है। आहाहा! रहस्यपूर्ण-चिट्ठी है ना, आखिरी की दो लाइन में लिखा है। आहाहा!

मुमुक्षु: साधक का उपयोग घर के काम में लगा है, तो ज्ञान तो बाहर काम कर रहा है। तो ज्ञान क्या.....

पू. लालचंदभाई: ज्ञान बाहर नहीं काम करता है, इंद्रियज्ञान बाहर काम करता है।

मुमुक्षु: तो ज्ञान की पर्याय के दो अंश ... पकड़ना?

पू. लालचंदभाई: हाँ! दो अंश होते हैं। जैसे चारित्र की पर्याय में दो अंश हैं ना, थोड़ी वीतरागता (है) और थोड़ा राग (है); ऐसे (ही) ज्ञान की पर्याय में (भी) दो भाग होते हैं - स्वाश्रित अतीन्द्रियज्ञान (और) पराश्रित इंद्रियज्ञान, ऐसे दो भाग होते हैं। क्योंकि साधक है ना, इसलिए दो भाग हैं। अज्ञानी में दो भाग नहीं हैं, केवली में नहीं हैं, साधक हुआ तो अतीन्द्रियज्ञान भी थोड़ा प्रगट हुआ (और) इंद्रियज्ञान भी थोड़ा है।

मुमुक्षु: एक प्रश्न है ध्रुव और ध्रौव्य में क्या अंतर है? ध्रुव और ध्रौव्य।

पू. लालचंदभाई: वो तो लगभग एक जैसा लगता है।

मुमुक्षु: ध्रुव शब्द में भाववाची प्रत्यय लगाने से ध्रौव्य बनता है।

पू. लालचंदभाई: हाँ तो ऐसा होगा।

मुमुक्षु: भावात्मक बताने के उसको ध्रौव्य बोलते हैं।

पू. लालचंदभाई: ठीक है। बस! बराबर! वो तो आपका काम है सब बताना।

डॉक्टर हुकुमचंद जी भारिल्ल: ध्रुवपना, ध्रौव्य यानि ध्रुवपना।

पू. लालचंदभाई: ध्रुवपना, ध्रौव्य यानि ध्रुवपना? बराबर! लो! खुलासा हो गया। ध्रौव्य यानि ध्रुवपना, ऐसा।

मुमुक्षु: एक प्रश्न ऐसा है कि उपयोग के आपने जो दो भेद बताए न, एक बाहर भी जाता है और एक अंदर भी काम करता है। ये बात कहाँ आती है?

पू. लालचंदभाई: क्या?

मुमुक्षु: आधार क्या है इसका? शुद्ध परिणति में ज्ञान का अंश अंदर है और एक उपयोग बाहर है।

पू. लालचंदभाई: वो अनुभव की दशा है, अनुभवी जाने। अज्ञानी नहीं जान सकता।

मुमुक्षु: कहीं शास्त्र में आती है क्या?

पू. लालचंदभाई: हाँ! शास्त्र में आती है। दो धारा हैं - एक ज्ञानधारा और एक कर्मधारा एक साथ में रहती है। समयसार (कलश ११०) में लिखा है। ज्ञानधारा और कर्मधारा, दोनों साथ में रहती हैं साधक को। जितनी उसको कर्मधारा है, उतना उसको कर्म बँधता है; जितनी उसको ज्ञानधारा है, उतनी उसको कर्म की निर्जरा होती है।

मुमुक्षु: दोनों धारा उपयोगरूप हैं? या एक लब्धरूप है और एक उपयोगरूप है - ऐसा है?

पू. लालचंदभाई: दो धारा हैं ना दो धारा। कर्मधारा तो जड़रूप है। ज्ञानधारा और कर्मधारा। ज्ञानधारा उपयोगरूप भी रहती है और परिणतिरूप रहती है। निर्विकल्पध्यान में वो उपयोगरूप होती है, ज्ञानधारा; और सविकल्पदशा में आवे तब परिणतिरूप है, ज्ञानधारा। ज्ञानधारा छूटती नहीं है बिल्कुल, ज्ञानधारा छूटे तो मिथ्यादृष्टि होता है। शुद्धनय से च्युत होवे तो बंध होता है। **तजै सुद्धनय बंध है, गहै सुद्धनय मोख** (नाटक समयसार, आस्रव अधिकार गाथा १३) - ऐसा है।

मुमक्षु: ज्ञानधारा लब्धरूप है या परिणतिरूप है?

पू. लालचंदभाई: परिणति, परिणति है।

मुमक्षु: लब्ध है?

पू. लालचंदभाई: लब्ध कह सकते हैं, परिणति भी कह सकते हैं। उसका अर्थ उत्पाद-व्ययरूप से कूटस्थ नहीं है। वो जो परिणति कहो, लब्धरूप पर्याय कहो द्रव्य की, आत्माश्रित, वो कूटस्थ नहीं है, उसमें उत्पाद-व्यय होता है।

मुमुक्षु: बराबर।

डॉक्टर हुकुमचंद जी भारिल्ल: चारित्र की अपेक्षा से परिणति कहते हैं और ज्ञान की अपेक्षा से लब्ध कहते हैं।

पू. लालचंदभाई: हाँ! ठीक है। ज्ञान की अपेक्षा से लब्ध कहो, चारित्र की अपेक्षा से परिणति कहो, कोई बाधा नहीं।

मुमुक्षु: एक प्रश्न आया है अंतरंग और बहिरंग उपेक्षा होते हुए भी, स्वरूप स्पष्ट होते हुए भी हम स्वरूप में क्यों नहीं ठहर पाते?

पू. लालचंदभाई: गुड़ डालो उतना मीठा हो - हमारे देश में ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु: जितना गुड़ डालो उतना मीठा होता है।

पू. लालचंदभाई: हाँ! जितना गुड़ डालो उतना मीठा होता है। जितनी रुचि, उतना काम होता है। जितने अनुपात में रुचि होनी चाहिए आत्मा की, उतनी नहीं है, तो काम नहीं बनता है।

मुमुक्षु: एक और प्रश्न आया है (कि) केवली भगवान केवलज्ञान से आत्मा को जानते हैं वह निश्चय है और सब लोकलोक को जानते हैं वह व्यवहार है। व्यवहार अभूतार्थ है, तो केवली भगवान की दिव्यध्वनी प्रमाणिक कैसे हुई? वो तो अभूतार्थ हुई?

पू. लालचंदभाई: ऐसे अभूतार्थ नहीं (है)। शुद्धात्मा में उस परिणाम का अभाव है, इसलिए अभूतार्थ है। परिणाम तो परिणामरूप है, केवलज्ञान केवलज्ञानरूप है और लोकालोक उसमें जनित (जानने में आ) जाता है, वो भी सत्यार्थ है। जो न हो तो इस आनेवाली चौबीसी में अपने श्रेणिक महाराजा पहले तीर्थंकर होंगे, ये कहाँ से बात आई? ऐसा नहीं हैं, जानते तो हैं मगर उसका लक्ष नहीं है। उसमें पर की अपेक्षा आती है इसलिए व्यवहार है, उसमें तन्मय नहीं हैं इसलिए व्यवहार है; (और) आत्मा में तन्मय होकर जानते हैं, इसलिए निश्चय है।

मुमुक्षु: कल आपने फरमाया था कि मैं तो मात्र निश्चय धर्म का ही उपदेश दूँगा, व्यवहार धर्म का नहीं। आप गृहस्थ की यथायोग्य क्रिया व व्यवहार-धर्म का उपदेश क्यों नहीं देते? आप भी गृहस्थ हैं अतः व्यवहार(-धर्म) का भी उपदेश देना चाहिए, क्योंकि गृहस्थ में शुभकर्म और अशुभकर्म ही होता है, शुद्धोपयोग नहीं होता। अतः कृपया निश्चय के साथ व्यवहार का भी प्रवचन देवें। ये किसी नए श्रोता का प्रश्न मालूम पड़ता है।

पू. लालचंदभाई: निश्चय के साथ व्यवहार होता है, उस व्यवहार को जानना उसका नाम व्यवहार है। व्यवहार को करना उसका नाम अज्ञान है। क्या कहा?

मुमुक्षु: व्यवहार को करना उसका नाम अज्ञान है।

पू. लालचंदभाई: शुभ राग का करना, उसका नाम अज्ञान है। मगर स्वरूप में लीन न हो (तब तक) शुभ राग आता है, देव-गुरु-शास्त्र प्रति भक्ति का, उसको जानना - उसका नाम व्यवहार है। आत्मा आत्मा को जानते-जानते पर्याय को जानता है तो निश्चयपूर्वक व्यवहार उत्पन्न हो जाता है। दो को जानता है, द्रव्य को भी जानता है और पर्याय को भी जानता है। पर्याय में दो अंश, स्वाश्रित और पराश्रित, **जाननेमें आता हुआ प्रयोजनवान है** (समयसार गाथा १२)। जानना सो व्यवहार है। जगत को (तो) कुछ करो, करना, करना, करना, (ऐसा) करने का उपदेश दो! आहाहा! भैया! आत्मा जाननहार है; करनार नहीं है, स्वरूप में, स्वभाव में नहीं है।

मुमुक्षु: शायद गुरुदेव के प्रवचनों की दो पुस्तकें हैं, एक श्रावकधर्मप्रकाश। उसमें श्रावक को दर्शन करना चाहिए, भक्ति करना चाहिए, संयम पालना चाहिए, इसका उपदेश दिया है।

पू. लालचंदभाई: बराबर है।

मुमुक्षु: एक पुस्तक मुक्ति का मार्ग है। उसमें सत्ता-स्वरूप के ऊपर प्रवचन है। उसमें देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति का उपदेश दिया है। आप क्यों नहीं देते हैं साहब?

पू. लालचंदभाई: मैंने कहा कि वो भाव आता है, 'उसको करना' (ऐसा) व्यवहार से कहा जाता है। कर्ता होता है और परिणाम आता है - ऐसा नहीं है; वो मार्मिक बात है।

मुमुक्षु: फ़रमाइए।

पू. लालचंदभाई: जो परिणाम आता है योग्यता अनुसार, चौथे-पाँचवें-छठवें (गुणस्थान में) शुभ राग आता है अवश्य, मगर वो 'करने जैसा है और उससे लाभ है' ऐसा नहीं मानना चाहिए। बस इतना है। आता जरूर है।

मुमुक्षु: एक प्रश्न आया है - जो जीव के पाँच भावों का वर्णन आता है, उसमें भी पारिणामिकभाव आता है।

पू. लालचंदभाई: बराबर।

मुमुक्षु: वो पारिणामिकभाव में और परम पारिणामिकभाव में क्या अंतर है?

पू. लालचंदभाई: ये सामान्य कथन से पारिणामिकभाव है। और पारिणामिकभाव के तीन भेद हैं - जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व। ये तीन प्रमाण ज्ञान का विषय बन गये। उसमें से शुद्ध पारिणामिकभाव निकालना है।

मुमुक्षु: फ़रमाइए।

पू. लालचंदभाई: पारिणामिकभाव के तीन भेद हैं - जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व। वो सामान्य पारिणामिक हो गया। ठीक है? अभी जीवत्व में से दो भाग निकालना - शुद्ध जीवत्व और अशुद्ध जीवत्व। शुद्ध जीवत्व, वो परम पारिणामिकभाव का विषय है। अशुद्ध जीवत्व, पर्यायार्थिक का पारिणामिक है। भव्यत्व पारिणामिक है, योग्यतारूप है बस - भव्य और अभव्य दोनों ही; गुण नहीं हैं, पर्याय की योग्यता है।

मुमुक्षु: अशुद्ध जीवत्व का क्या मतलब है?

पू. लालचंदभाई: दस प्राण से जीता है इसलिए अशुद्ध जीवत्व कहलाता है; वो संसारी जीव को है।

मुमुक्षु: वो राग आदि भावों के समान वो भी विकार है, अशुद्धता है (क्या) इसलिए अशुद्ध जीवत्व कहा?

पू. लालचंदभाई: ये निकल जाता है ना? निकलता है ना। (जीव) सिद्ध होता है तो (ये) कहाँ होता है? रहता नहीं है। संसारी जीव के अंदर दस प्राण होते हैं, संज्ञी पंचेंद्रिय तक। बाकी एकेन्द्रिय में चार प्राण हैं।

मुमुक्षु: वो दस प्राण तो साहब कर्म के उदय से होते हैं?

पू. लालचंदभाई: उसको कर्म की सापेक्षता से देखो तो उदय दिखता है, बाकी लिया है पारिणामिकभाव में।

मुमुक्षु: क्यों लिया?

पू. लालचंदभाई: वो तो सर्वज्ञ भगवान की वाणी में आया है। बस! इतना समझना। प्रश्न उठता है सबको। उठे प्रश्न ऐसा है (कि) पारिणामिक में (ही) क्यों लिया?

निरपेक्ष से देखो तो पारिणामिक है और मिथ्यात्व के परिणाम को निरपेक्ष से देखो तो पारिणामिक है। दस प्राण तो उसके घर में रहे। क्या कहा?

मुमुक्षु: मिथ्यात्व का परिणाम भी पारिणामिक है?

पू. लालचंदभाई: पारिणामिक है। यानि सत् अहेतुक है, निश्चय से। समझे? व्यवहार से देखो तो कर्म के उदय का संबंध है उसके साथ, सापेक्ष। और निश्चय से देखो तो कर्म के उदय के षट् कारक के बिना ही (मिथ्यात्व) होता है। आहाहा! वो तेरह नंबर की गाथा में भाव है सब। समयसार की तेरह नंबर की गाथा में (वो) भाव है।

अहमदाबाद में एक प्रश्न आया कि नव तत्त्व में जो भाव बंध है, बंध तत्त्व है कि नहीं? तो बंध तत्त्व को यानि मिथ्यात्व को कोई जीव भूतार्थ से जाने, तो सम्यग्दर्शन होता है? कि हाँ! हो जाता है। अभूतार्थनय से जाने तो मिथ्यादृष्टि होता है। अभूतार्थनय से यानि 'आत्मा कर्ता है' ऐसा माने तो मिथ्यात्व छूटता नहीं है। मगर मिथ्यात्व का परिणाम भी क्रमबद्ध पर्याय में, उसके कालक्रम में होने योग्य होता है। भूतार्थ का अर्थ लगाया है - होने योग्य। होने योग्य, बस। ऐसा 'भूतार्थ' विशेषण किसी भी जगह पर नहीं है। साहब! भूतार्थ विशेषण most important (सबसे महत्वपूर्ण) है। आहाहा!

भले गर्भित हो पर खुलेरूप में तो समयसार में (ही) आया है। और सम्यग्दर्शन; भूतार्थनय से जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष को जो जाने उसको सम्यग्दर्शन होता है, नियम से होता है। क्योंकि पर्याय का कर्ता पर्याय है, मैं नहीं हूँ तो दृष्टि द्रव्य पर आ जाती है। होने योग्य होता है, मेरे से नहीं होता है। तो होने योग्य होता है, तो पुरुषार्थ क्या रहा?

मुमुक्षु: हाँ जी, फ़रमाइए।

पू. लालचंदभाई: उसमें ही पुरुषार्थ रहा, ज्ञाता बन गया। 'करना' ऐसे पुरुषार्थ की व्याख्या जीव करता है कि कुछ करना, कर्म का करना, देह का करना, पर का करना, समाज का करना। आहाहा!

समाज को सुधारना, वो करना। नहीं? पाटनी जी? आहाहा! 'करना' पुरुषार्थ नहीं है, कर्ताबुद्धि छोड़कर ज्ञायक पर दृष्टि देकर स्थिर हो जाना, वो पुरुषार्थ है। आहाहा! थोड़ी स्थिरता हो तो सम्यग्दर्शन, ज्यादा स्थिरता आ जाए तो चारित्र हो जाता है, ये पुरुषार्थ है। स्वभाव को स्वभावरूप लक्ष में लेना, ज्ञान-श्रद्धान में लेना, उसका नाम सत्य पुरुषार्थ है। राग का करना वो पुरुषार्थ नहीं है, वो तो अज्ञान है। पुरुषार्थ की वो व्याख्या है। कुछ करना नहीं, केवल शुद्धात्मा को जानना और बाद में ठहर जाना, आहाहा! लीन हो जाना। दो प्रकार का पुरुषार्थ है एक सम्यग्दर्शन के लिए (और) एक चारित्र के लिए।

मुमुक्षु: इस संदर्भ में एक प्रश्न आया है कि दृष्टि का विषय स्पष्ट होने के बाद भी चारित्र में इतना लंबा समय क्यों लगता है?

पू. लालचंदभाई: योग्यता।

मुमुक्षु: वो जीव सम्यग्दर्शन का पुरुषार्थ कर लेता है तो चारित्र का पुरुषार्थ क्यों नहीं करता?

पू. लालचंदभाई: चालू है पुरुषार्थ (तो)। मगर उसकी जब योग्यता पके तब मोक्ष होता है। ऐसे (कुछ करने से) मोक्ष नहीं होता है क्योंकि अकर्ता है आत्मा। इसलिए कर्ता नहीं है, कर्ता ...।

लोगों को तो ऐसा लगता है कि सम्यग्दर्शन हो गया तो गुरुदेव चारित्र क्यों अंगीकार नहीं करते हैं? कई वहाँ आते थे हिंदुस्तान से। साहब! अभी इतना करो कि चारित्र अंगीकार करो तो सारा हिंदुस्तान आपके पैरों में पड़ जाएगा। नग्न हो जाओ। आहाहा! करना नहीं है, होता है भैया।

मुमुक्षु: सचमुच यही बात है। सचमुच यही कहते थे लोग - क्यों स्वामी जी मुनि क्यों नहीं बनते हैं?

पू. लालचंदभाई: हाँ! मुनि क्यों नहीं बनते हैं? बस! कर्ताबुद्धिवाला (ऐसा ही प्रश्न करता है)। वो तो मुनि की बात करते हैं मगर वहाँ तक गई उसकी दृष्टि, सीमंधर भगवान तक। कि 'प्रभु! मोक्ष की पर्याय कर दो आप, अनंत वीर्य प्रगट हो गया (है आपको)'। कर्ता (पना) कहाँ तक उसने फैलाया? महाविदेहक्षेत्र में कर्ताबुद्धि को ले गया, (भगवान) तक, भगवान को कहा कि 'साहब! प्रभु! आपकी वाणी में आया कि १३ वाँ गुणस्थान भी संसार है, हमसे (ये) सहा नहीं जाता। (बस!) एक इतना काम करो, हमारी विनती है, और बड़ा ऊँचा काम (है) मोक्ष कर दों'। आहाहा! तेरी कर्ताबुद्धि (तू) हम तक लाया? आत्मा ज्ञाता है करनेवाला नहीं है! कर्ता का भूत बहुत अनंतकाल का हो गया है, भूत।

मुमुक्षु: एक प्रश्न है - अकाल मृत्यु क्यों कही जाती है जबकि क्रमबद्ध पर्याय में तो मृत्यु निश्चित है, तो उसको अकाल मृत्यु कहने का क्या कारण है?

पू. लालचंदभाई: वो उपचार से कहा है बाकी तो क्रमबद्ध छूटता नहीं है। उपचार से कहा जाता है बाकी क्रमबद्ध का सिद्धांत फिरनेवाला है ही नहीं। क्रमबद्ध का सिद्धांत फिरे तो आत्मा कर्ता हो जाता है और सर्वज्ञ भगवान की सिद्धि नहीं होती है। तीन दोष आते हैं।

क्रमबद्ध पर्याय को नहीं मानता है उसमें तीन दोष आ जाते हैं:

(१) आत्मा को कर्ता माना और

(२) सर्वज्ञ भगवान को भी नहीं माना,

(३) पर्याय का, सत् का खून, त्रिकाली द्रव्य का, अकर्ता का खून कर दिया उसने।

पर्याय क्रमबद्ध है! क्रमबद्ध जाने उसकी दृष्टि द्रव्य पर आती है, पर्याय पर नहीं रहती है। क्रमबद्ध पर्याय को देखते-देखते क्रमबद्ध पर्याय का निर्णय नहीं होता है। क्रमबद्ध पर्याय है, होने योग्य होता है काल-क्रम में - ऐसा ख्याल में आ जावे (कि) मैं करनेवाला नहीं हूँ, मैं तो ज्ञाता - ज्ञायक हूँ, तो दृष्टि इधर आ जाती है, अनुभव हो जाता है। तो क्रमबद्ध पर्याय, अकर्ता हुआ तो क्रमबद्ध पर्याय का ज्ञान हुआ और सर्वज्ञ भगवान को उसने मान लिया, बस। जैसा सर्वज्ञ भगवान ने देखा वैसा ही होता है।

मुमुक्षु: अभी आपने फरमाया था कि मिथ्यात्व का परिणाम भी सत् है, अहेतुक है। तो मिथ्यात्व का परिणाम सत् है, तो फिर वो सच्चा हो गया?

पू. लालचंदभाई: एक समय के लिए 'है', 'है' इसलिए सत् है।

मुमुक्षु: बराबर।

पू. लालचंदभाई: है कि नहीं? कि नहीं है? खरगोश के सींग है? राग नहीं है बिल्कुल? आस्रव तत्त्व नहीं है? जीव में नहीं है (ये सच है)। पर्याय में नहीं है (क्या)? पर्याय में है; है, वहाँ तक है; कायमी नहीं है। एक समय की आयुष्य है मिथ्यात्व की। दूसरे समय तो मिट जाता है। अनुभव हो तो मिट जावे।

मुमुक्षु: अगला प्रश्न है (कि) संसारी जीव संसार अवस्था में कम से कम कितने प्रदेश रोकता है?

पू. लालचंदभाई: संसारी जीव में कितने प्रदेश?

मुमुक्षु: संसार अवस्था में कम से कम कितने प्रदेश रोकता है? कितनी अवगाहना होती है संसारी जीव की?

पू. लालचंदभाई: ऐसा आया है थोड़ा आठ प्रदेश रहते हैं और वो सब मेरी जानकारी के बाहर है। मैं उसके अंदर गहरा नहीं उतरता हूँ। जो आगम में हो वो सही (है)।

मुमुक्षु: लोकाकाश जितना रहता है.....

पू. लालचंदभाई: हाँ! वो तो, वो करे तब। क्या करे? समुद्घात करे तब, हाँ। समुद्घात की बात है। लोकाकाश प्रमाण हो जाता है। मूल (शरीर) में रह जाता है और बाकी सब फैल जाते हैं। जानने की बात है वो।

मुमुक्षु: आत्मा में जो ज्ञान गुण है, वो प्रतिसमय जानने का काम करता है?

पू. लालचंदभाई: हाँ! करता है।

मुमुक्षु: बाकी के गुण क्या करते हैं?

पू. लालचंदभाई: बाकी के जो गुण हैं ...। गुण तो निष्क्रिय रहते हैं, मगर गुणी को नहीं मानता है वो मिथ्यादर्शन-मिथ्याज्ञान-मिथ्याचारित्ररूप से परिणमता है। बाकी सचमुच तो ये पुद्गल का परिणाम है। वो ज्ञानरूप ही परिणमता है; मिथ्यात्वरूप से आत्मा परिणमता ही नहीं है, द्रव्यदृष्टि से। सूक्ष्म बात है!

मुमुक्षु: फ़रमाइए।

पू. लालचंदभाई: स्वभाव की दृष्टि से देखो तो आत्मा - मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय और योग, चार

प्रकार का जो आस्रव है ना, उसके तेरह भेद हैं, सयोग जिन केवली तक के तेरह भेद हैं, वो (आस्रव) कर्म को करे तो करे - मैं कर्ता नहीं हूँ। वो आस्रव जो उत्पन्न होता है, वो पूर्व कर्म का कार्य है और नए कर्म का वो कारण है; मैं तो अकर्ता हूँ। त्रिकाली द्रव्य तो अकर्ता है, ऐसी सूक्ष्म बात बहुत है। आहाहा! शल्य हो गई (कि) 'मैं मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र का कर्ता हूँ'। स्वभाव दृष्टि से वो पुद्गल का कार्य है आत्मा का कार्य नहीं है। (समयसार) १०९, ११०, १११ और ११२, चार गाथा पढ़ लेना। आहाहा! पर्यायदृष्टिवाले को बैठेगी नहीं, वो भी (हमको) मालूम है; मगर (अगर) बैठेगी तो पर्यायदृष्टि छूट जाएगी और द्रव्यदृष्टि हो जाएगी, लाभ होगा।

मुमुक्षु: तो आपने अभी मिथ्यात्व को पुद्गल का कार्य कहा है?

पू. लालचंदभाई: हाँ! पुद्गल का ही कार्य है (वो) जीव का कार्य नहीं है, जो मिथ्यात्व छोड़ना हो तो! और मिथ्यात्व रखना है तो तो अज्ञानी मानता है कि 'मिथ्यात्व पारिणाम का कर्ता भी मैं और मेरा (वो) कार्य है', तो करके ले चार गति में (घूमना)। टालना है कि रखना है मिथ्यात्व (को)? जिसे रखना हो तो रखो। हमको तो नहीं रखना है। और ये भाई-बहन इधर सब आए हैं, उनको भी नहीं रखना है। इस compound (परिसर) के बाहर वालों को रखना हो तो भले रखो, इधर बैठनेवाले कोई मिथ्यात्व रखना चाहते नहीं हैं, मालूम है मेरे को।

मुमुक्षु: परंतु साहब! वो सत् और अहेतुक है ना, तो पुद्गल का कार्य कैसे हुआ?

पू. लालचंदभाई: यह द्रव्य स्वभाव की दृष्टि से देखने से वो राग सब मिथ्यात्व पर - पुद्गल का कार्य है, पुद्गल के संग से हुआ है, उसके निमित्त के संग से हुआ (है), निमित्त-सापेक्ष है, वो पुद्गल का ही कार्य है, व्याप्य-व्यापक संबंध उसके साथ है। निमित्त-नैमित्तिक छोड़ो, व्याप्य-व्यापक संबंध कहा है। पुराना कर्म व्यापक (और) मिथ्यात्व का परिणाम व्याप्य, ऐसा व्याप्य-व्यापक संबंध है। वो तो ठीक! मगर नया कर्म जो बँधता है उसके साथ तो मिथ्यात्व का व्याप्य-व्यापक संबंध जोड़ दिया। आत्मा निराला अकर्ता रह गया।

जिसको भेदज्ञान करना है ना उसके लिए समयसार है! आहाहा! स्वच्छंदी नहीं होता है; स्वतंत्र हो जाता है।

ऐसा एक बनाव बना ना। सोगानी जी ने एक बार दृष्टांत दिया कि एक तोता था, तोता, वो उसने भूंगणी (नली) पकड़ ली। तो भूंगणी पकड़ी तो उल्टा हो गया क्योंकि भूंगणी घूमती थी ना, तो सिर उल्टा हो गया। तो दूसरा तोता आया, अरे! भूंगणी छोड़ दे, छोड़ दे। नहीं छोड़ूँ, छोड़ूँगा तो मैं मर जाऊँगा। तो तोते ने समझाया कि मर नहीं जाएगा (बल्कि) तू उड़ जाएगा। अपनी जाति का तोता उपदेश देवे तो ज़रा विचार तो आया। कौआ जो उपदेश देवे तो नहीं माने, कौआ उपदेश देवे तो नहीं माने; मगर अपनी जाति का तोता (है), हमारे हित के लिए कहता है (ऐसा सोचा)। तो उसने छोड़ दिया! छोड़ दिया तो उड़ गया। आहाहा!

मैं कर्ता हूँ, राग का मैं कर्ता हूँ - भूंगणी पकड़ ली है उसने। आहाहा! कर्तापने को छोड़ता ही नहीं है। इतनी भूंगणी पकड़ी है, अनादि से, (कि) छोड़ता ही नहीं है। आहाहा! भैया! ये दो घड़ी practise (प्रयोग) तो कर, तेरे को लाभ होगा। आहाहा! दो घड़ी का काम है। (मैं) राग का कर्ता नहीं

हूँ, (मैं) ज्ञान का कर्ता हूँ वो भी कथंचित् (से) हूँ, मैं तो ज्ञायक हूँ (इसमें) आ जा। दो घड़ी प्रयोग करके बाद में देख अनुभव होता है कि नहीं होता है।

अनुभव सबको करना है मगर कर्तापना को छोड़ना नहीं है, रखकर अनुभव करना है, धर्म करना है। कहाँ से धर्म होवे?

मुमुक्षु: ज्ञाता और ज्ञायक में क्या अंतर है?

पू. लालचंदभाई: ज्ञाता और ज्ञायक एक ही भाव है मगर शब्द फेर है। तो ज्ञाता में ऐसा अर्थ होता है कि ज्ञाता मतलब, परिभाषा इसमें आया कि स्वयं स्वयं को जानता है इसलिए आत्मा का नाम ज्ञाता है (समयसार कलश २७१)। जानन-क्रिया साथ में ली है इसलिए उसको ज्ञाता कहने में आता है। गुजराती हो गया। क्या? 'पोते पोताने जाणे छे' यानि स्वयं, स्वयं को जानता है इसलिए आत्मा का नाम ज्ञाता है, इसमें क्रिया आ गई, ज्ञाता में (जानन) क्रिया आ गई। और ज्ञायक (तो) ज्ञायक ही है वो तो निष्क्रिय है। तो भी ज्ञायक ज्ञायक है, उसमें क्रिया आ गई। ज्ञायक निष्क्रिय भी है और सक्रिय भी है। एक, ज्ञायक शब्द एक है।

क्या कहा? ये विशाल है जैनदर्शन, बहुत विशाल है।

एक ज्ञायक, निष्क्रिय भी है और सक्रिय भी है। आहाहा! अनुभव के काल में उस सक्रिय का अनुभव हो जाता है ऐसा (समयसार) सेटिका की गाथा (३५६-३६५) में लिखा है। आत्मा पर को जानता ही नहीं, (यदि) जाने तो आत्मा का नाश हो जाए। और आत्मा आत्मा को जानता है, वो व्यवहार है, उसमें साध्य की सिद्धि होती नहीं है। ज्ञायक तो ज्ञायक है। ज्ञान की पर्याय का निश्चय जब अंदर में अभेद होता है ना तो परिणामी हो जाता है। अपरिणामी ज्ञायक और परिणामी भी ज्ञायक; अकर्ता भी ज्ञायक और कर्ता-कर्म का अनन्य हुआ तो भी (ज्ञायक)। ज्ञायक तो ज्ञायक है। आहाहा!

वो ज्ञायक शब्द वहाँ से आया है, वहाँ से आया है। बहुत दूर देशावर (देश) से आया है। लाए हैं कुंदकुंद भगवान वहाँ से। (समयसार की) पाँच गाथाओं तक आत्मा का नाम ज्ञायक नहीं लिखा। छठवीं गाथा में शिष्य ने प्रश्न किया कि एकत्व-विभक्त आप फरमाते हैं, उसका क्या स्वरूप है? कि परिणाम मात्र से भिन्न (और) अनंत गुण से (जिसका) एकत्व है, उसका नाम ज्ञायक है। बुआ ने नाम रखा छठवीं में, छठवीं (दिन) में नाम रखते हैं ना इधर? वहाँ भी रखते हैं। छठवीं है ना, तो उसमें। तो छठवीं गाथा में ही ज्ञायक आया। आहाहा! ऐसा है।

ज्ञायक चमत्कारिक है शब्द, चमत्कारिक है, सारे जैनदर्शन बारह अंग का सार इसमें है। सम्यक् एकांत पूर्वक अनेकांत उसमें गर्भित हो गया है, ज्ञायक में। क्या कहा? सम्यक् एकांत पूर्वक अनेकांत, एक ज्ञायक शब्द में आ गया सब। आहाहा! बारह अंग का सार है ज्ञायक में। ऐसा माल भरा है ज्ञायक में।

मुमुक्षु: सक्रिय और निष्क्रिय का खुलासा थोड़ा विशेष करें।

पू. लालचंदभाई: द्रव्यदृष्टि से देखो तो सब पारिणामिक भाववाले (हैं)। गुण हैं ना तो गुणी भी शुद्ध पारिणामिक (है)। तो शुद्ध पारिणामिक की व्याख्या आई है (कि) **निष्क्रिय: शुद्धपारिणामिक:** (समयसार गाथा ३२०, तात्पर्यवृति टीका, जयसेनाचार्य)। तो आत्मा के जितने गुण हैं वो निष्क्रिय हैं,

उनमें क्रिया नहीं है, उनमें क्रिया नहीं है। क्रिया, व्यक्त जो पर्याय होती है उसमें क्रिया होती है। परसन्मुख हो तो मिथ्यात्व आदि (की) क्रिया होती है (और) स्वसन्मुख हो तो सम्यग्दर्शन आदि क्रिया होती है। वो सक्रिय है। पर्याय सक्रिय है तो पर्याय (को) अभेद करके उपचार से आत्मा भी सक्रिय हो गया। पर्याय से निरपेक्ष निष्क्रिय और सम्यग्दर्शन आदि निर्मल पर्याय से अभेद (से) देखो तो सक्रिय है। निष्क्रिय भी है और सक्रिय भी है; ऐसे दो का एक समय में ज्ञान होना (वो) निश्चय-व्यवहार का ज्ञान हो गया! निष्क्रिय भी मैं हूँ और सक्रिय भी मैं हूँ; उसमें सारे जिनागम का सम्यक् एकांत पूर्वक अनेकांत आ गया, कोई दोष है नहीं इसमें। सांख्यमति जैसे कहते हैं एकांत है, अपरिणामी है - ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु: आप कहते हैं पहले ज्ञायक होता है फिर ज्ञाता होता है। इसका क्या मतलब है?

पू. लालचंदभाई: ज्ञायक ही ज्ञाता होता है यानि पर पदार्थ ज्ञाता नहीं होते हैं। पर पदार्थ का जो लोभ है ना जानने का, उसको छुड़ाने के लिए तू ज्ञाता है, तो आत्मा का ही ज्ञाता है, ज्ञायक का ही ज्ञाता है तू। इधर आ जा ना, ऐसा। विषय बदल दे, ज्ञेय बदल दे। तेरा ज्ञेय तो इधर है, वहाँ (बाहर) कहाँ ज्ञेय है तेरा? समझे? तो उपयोग हट जाता है। व्यावृत्त हो जाता है परज्ञेय से।

मुमुक्षु: अगला प्रश्न है परमात्मा तो अरिहंत और सिद्ध भगवान हैं और हम लोग तो संसारी हैं। फिर आप ऐसा कैसे कहते हैं कि 'हम अभी परमात्मा हैं', ऐसा कैसे कहते हैं?

पू. लालचंदभाई: ऐसा एक आया है सूत्र।

जो निगोद में सो ही मुझमें, सो ही मोक्ष मँझार।

निश्चयभेद कछू भी नाहीं, भेद गिनै ... (पंडित बुधजन जी द्वारा भजन, हमको कछु भय ना रे)

मुमुक्षु: संसार।

पू. लालचंदभाई: मिथ्यात्व! क्या कहा? संसार कहो कि (मिथ्यात्व कहो), एक ही बात है।

मुमुक्षु: translation (अनुवाद) बढ़िया है।

पू. लालचंदभाई: हाँ! संसार, हाँ संसार (ठीक है); मगर मिथ्यात्व आता है तो चौंक जाता है।

भेद नहीं है! पर्यायदृष्टि से भेद है। द्रव्यदृष्टि से (कोई अंतर नहीं)। आहाहा! अनंता जीव भगवान हैं, निगोद के जीव में भी भगवान है और सिद्ध भगवान भी भगवान हैं। आहाहा! पर्याय को गौण करो, देखनेके लिए गौण करके द्रव्य स्वभाव को देखो। आहाहा! नव तत्त्व में छुपी हुई आत्मज्योति है, उसको देखो।

बहुत अच्छा है! **जो निगोद में सो ही मुझमें, सो ही मोक्ष मँझार। निश्चयभेद कछू भी नाहीं** अंतर नहीं, अंतर नहीं। और **भेद गिनै** तो मिथ्यात्व।

मुमुक्षु: बराबर।

पू. लालचंदभाई: **संसार** कहो कि (मिथ्यात्व कहो) एक ही बात है।

जिनपद निजपद एकता, भेदभाव नहीं कांई;

लक्ष थवाने तेहनो, कह्याँ शास्त्र सुखदायी. ३

श्रीमद् (राजचन्द्र जी, चैत्र शुद्ध ९, १९५७) का वाक्य है।

मुमुक्षु: हाँ जी। अगला प्रश्न है ..

पू. लालचंदभाई: ज्ञानी तो बहुत हो गए और बहुत कहकर चले गए। मगर उसको भेदज्ञान करना नहीं आता है कि पर्याय नाशवान है मैं नहीं हूँ, मैं अविनाशी तत्त्व मैं हूँ; बस इतना ही है। ज्यादा तो है नहीं, द्रव्य-पर्याय के बीच में भेदज्ञान है (बस)। बोलो!

मुमुक्षु: कारणशुद्धपर्याय का स्वरूप स्पष्ट करने की कृपा करें।

पू. लालचंदभाई: कारणशुद्धपर्याय में ऐसा है कि जैसी कार्यशुद्धपर्याय होती है, तो कार्य का कारण उसका नज़दीक का होना चाहिए। तो गुण के ऊपर की सपाटी उसका नाम कारणशुद्धपर्याय कहा जाता है। (बस) इतना है और एक ही जगह (पर) है, बहुत शास्त्रों में नहीं आता है इसलिए गुरुदेव ने बाद में वो बंद कर दिया (था) क्योंकि दूसरे शास्त्र में है नहीं (और) समझाना कठिन पड़ता है।

दूसरा एक इसमें विचार करने से थोड़ा निकलता भी है कि प्रत्येक गुण हैं ना, प्रत्येक गुण, वो जो गुण हैं, उन गुण का जो कार्य होता है, वो कार्य होता है (वह) गुण से होता है, गुणी से नहीं। ज्ञान गुण है; ज्ञान गुण का जो विशेष कार्य होता है वो ज्ञान का ही कहा जाता है। हें? वो गुण है ना वो कारण है और पर्याय कार्य है। गुण कारण और पर्याय कार्य (है), उसके आश्रय से होती है ना, इसलिए। तो जिसमें पारिणामिकभाव तन्मय है, उसको कारणशुद्धपर्याय कहा जाता है। तो प्रत्येक गुण में पारिणामिकभाव तन्मय है इसलिए प्रत्येक गुण, कार्य का कारण हो गया तो कारणशुद्धपर्याय हो गई; गुण का नाम ही कारणशुद्धपर्याय (है)। एक नियमसार (गाथा १४) में ऐसा आता है संस्कृत श्लोक है कि जो भेद करना उसका नाम पर्याय है। **भेदमेति गच्छतीति** ऐसा आता है।

मुमुक्षु: **परि समन्तात् भेदमेति गच्छतीति पर्यायः**

पू. लालचंदभाई: हाँ! **परि समन्तात्** जितना भेद करना उसका नाम पर्याय है। तो गुण का कार्य, उसका है, तो भेद करना (कि) ये कारण - ज्ञान की पर्याय का कारण ज्ञान गुण, चारित्र गुण की पर्याय का कारण चारित्र गुण; अभेद अपेक्षा से आत्मा हैं। अभी कारणशुद्धपर्याय की बात चलती है, तो गुण को भी पर्याय कहा जाता है भेद की अपेक्षा से, बस! उत्पाद-व्यय नहीं है उसमें। ऐसा भी थोड़ा विचार करने से निकलता भी है।

मुमुक्षु: ये साहब! ऊपर की सपाटी की जो बात आई है, तो ऐसा होता है कि जैसे मान लीजिए गुण ६ इंच मोटा है और ऊपर की सपाटी है?

पू. लालचंदभाई: नहीं, नहीं! ऐसा नहीं! नहीं, नहीं!

मुमुक्षु: क्या अर्थ है ऊपर की सपाटी का?

पू. लालचंदभाई: इंच-विंच नहीं है। जो गुण हैं, गुण, तो गुण के ऊपर से, ये गुण के आश्रय से पर्याय होती है ना, तो गुण के ऊपर की सपाटी आई।

जैसे समुद्र के ऊपर की सपाटी है ना। समुद्र का दृष्टांत दिया गुरुदेव ने। तो ऊपर की सपाटी है। तो ऊपर की सपाटी में कार्य होता है। तो वो ऊपर की सपाटी का नजदीक का जो है ना, उसका नाम कारण दे दिया। बस! ऐसा है। बाकी बहुत शास्त्रों में नहीं आता है कारणशुद्धपर्याय का; एक नियमसार में ही आया है बस।

मुमुक्षु: ये कारणशुद्धपर्याय द्रव्यार्थिकनय का विषय है या पर्यायार्थिकनय का विषय है?

पू. लालचंदभाई: कारणशुद्धपर्याय द्रव्यार्थिकनय का विषय है। पर्यायार्थिकनय का विषय नहीं है। क्योंकि पारिणामिकभाव उसमें तन्मय है, ऐसा पाठ है। और चार भाव में; राग में उदयभाव तन्मय है, उपशमभाव में उपशमभाव तन्मय है पर्याय में, केवलज्ञान में क्षायिकभाव तन्मय है - उनमें पारिणामिकभाव तन्मय नहीं है और पारिणामिकभाव में क्षायिकभाव तन्मय नहीं है। पर्याय का धर्म पर्याय में तन्मय है, चार (धर्म) पर्याय के धर्म हैं वो लिया है उसमें। दो लिए हैं; पारिणामिकभाव द्रव्य में तन्मय है; और क्षायिकभाव लिया कि केवलज्ञान की - मोक्ष की पर्याय उसमें तन्मय है। क्षायिकभाव उसमें तन्मय है, पर्याय में। केवलज्ञान की पर्याय में क्षायिकभाव तन्मय है। आहाहा!

मिथ्यात्व में कौनसा (भाव) तन्मय है? वहाँ औदायिकभाव तन्मय है। उपशम सम्यग्दर्शन में कौन तन्मय है? कौन सा भाव? कि उपशम (भाव) तन्मय है, ऐसा। सब भेदज्ञान है। बहुत सरस बात है। आहाहा! समझने से समझ में आ जाता है।

मुमुक्षु: कारणशुद्धपर्याय उत्पाद-व्ययरूप है या ध्रुवरूप है?

पू. लालचंदभाई: ध्रुवरूप है; उत्पाद-व्ययरूप नहीं है।

मुमुक्षु: स्वयं पारिणामिकभाव है या पारिणामिकभाव से तन्मय है?

पू. लालचंदभाई: पारिणामिकभाव से तन्मय है (नियमसार गाथा १५), ऐसा लिखा (है)।

मुमुक्षु: स्वयं पारिणामिकभाव नहीं है?

पू. लालचंदभाई: नहीं! स्वयं पारिणामिक! स्वभाव और स्वभाव का भेद करो तो दो हैं। भेद नहीं करो तो द्रव्य कहो, पारिणामिकभाव कहो, स्वभाव कहो, तन्मय कहो - जो कहो सो कहो।

भाव पाँच हैं ना? उन पाँच भाव को निकालना है ना, तो द्रव्य में पारिणामिकभाव तन्मय है। बाकी द्रव्य और पारिणामिकभाव जुदा कहाँ हैं? चार भाव जुदा करने के लिए पारिणामिकभाव द्रव्य में तन्मय है - ऐसा पाठ है।

१६ नंबर की गाथा है ना १५ या १६, ऐसा है। १५ वीं अच्छा! जो हो।

मुमुक्षु: कारणशुद्धपर्याय दृष्टि का विषय बनती है?

पू. लालचंदभाई: दृष्टि का विषय ही है, त्रिकाली द्रव्य है वो। भले पर्याय नाम लिखा (है) बाकी पर्याय नहीं है, वो तो गुणों का पिंड है।

मुमुक्षु: वाह! ...जो अनंत गुणों का अखंड अभेद एक पिंड है, वो कारणशुद्धपर्याय है?

पू. लालचंदभाई: हाँ! कहा जाता है। कोई परेशानी नहीं (है इसमें)।

मुमुक्षु: बहुत! बहुत अच्छे उत्तर आते हैं। बहुत संतोष होता है सबको। सब लोगों की भावना है कि हर वर्ष पूरे पंद्रह दिन इस प्रकार की चर्चा चलनी चाहिए।

बाबूजी युगल किशोर जी: सबकी इच्छा यह है।

पू. लालचंदभाई: भावना तो रहती है।

बाबूजी युगल किशोर जी: मैं अनुमोदन करता हूँ।

मुमुक्षु: बाबूजी कहते हैं कि हम अनुमोदन करते हैं।

मुमुक्षु: बोलिए महावीर भगवान की जय!